Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN: 2581-6241 Volume - 2, Issue - 6, Nov-Dec – 2019
Bi-Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 1.847
Received on : 15/12/2019 Accepted on : 27/12/2019 Publication Date: 30/12/2019

भारत में शिक्षा के स्वरुप पर स्वामी विवेकानन्द जी के विचार

देवेन्द्र सिंह चम्याल
एम. एस–सी. रसायन विज्ञान, एम. ए . गणित, एम. ए . इतिहास, एम. ए . राजनीतिशास्त्र, एम. एड. (गोल्ड मैडलिस्ट), नेट (शिक्षाशास्त्र), शोध छात्र एवं अतिथि व्याख्याता, शिक्षा संकाय, एस. एस. जे. परिसर, अल्मोड़ा, कुमाऊँ वि. वि. नैनीताल।
ई–मेलः - deepu.chamyal666@gmail.com

सारांश : इस शोधकार्य का मुख्य उद्देश्य भारत में शिक्षा के स्वरुप पर स्वामी जी के विचारों का अध्ययन करना है। इनका जन्म 12 जनवरी 1963 ई0 को हुआ था। माता भुवनेश्वरी देवी ने अपने पुत्र को शिवजी का प्रसाद माना और उसे वीरेश्वर नाम दिया, परन्तु प्यार से उन्हें नरेन्द्र कहते थे। इनके पिता श्री विश्वनाथ कलकत्ते के उच्च न्यायालय में एटर्नी (वकील) थे। स्वामी जी पर इनका अमिट प्रभाव पड़ा। ये बचपन से ही पूजा पाठ में रुचि लेते थे और ध्यानमग्न हो जाते थे। इनकी इसी प्रवृत्ति ने आगे चलकर इन्हें नरेन्द्रनाथ से स्वामी विवेकानन्द बना दिया। स्वामी विवेकानन्द ने भारत में हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार तथा विदेशों में सनातन सत्यों का प्रचार किया। इस कारण वे प्राच्य एवं पाश्चत्य देशों में सर्वत्र समान रुप से श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। इनके प्रधानाचार्य **विस्टर हेस्टी** ने कहा था – **''मैं बहुत दूर तक घुमा हूँ। मैंने इस जैसा लड़का जर्मनी के विश्वविद्यालयों के दर्शन के छात्रों में भी नहीं देखा।''** स्वामी विवेकानन्द पर स्वामी रामकृष्ण का प्रभाव स्वाभाविक है। स्वामी जी की शिक्षा के विचार प्राचीन तथा आधुनिक के समन्वय हैं। वे शिक्षा के सम्बन्ध में मध्यम मार्गी हैं। वे एक सन्त की तरह **''वसुधैव कुटुम्बकम्'** के भाव का प्रचार करते हैं, तो दूसरी ओर राष्ट्र और राष्ट्रवादी शक्तियों के निर्माण के लिये तथा संचय पर भी बल देते हैं।

मुख्य शब्द : नरेन्द्रनाथ, स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा, रामकृष्ण परमहंस।

१. प्रस्तावना :

धर्म और दर्शन के प्रति स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा वैज्ञानिक था। इन्होंने स्पष्ट किया कि कला, विज्ञान और धर्म, एक ही परम सत्य को व्यक्त करने के तीन विभिन्न साधन है। उन्होंने अपने काल की शिक्षा का विरोध किया और उसे निषेधात्मक एवं भावात्मक बताया। उन्होंने बताया कि विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा मनुष्य बनाने वाली शिक्षा नहीं है। वह कुछ भी नहीं सिखाती। केवल जानकारियों का ढेर देती है जो आत्मसात हुए बिना मस्तिष्क में पड़ा रहता है। यह शिक्षा जन समुदाय को जीवन संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती। उनकी चारित्रय शक्ति का विकास नहीं करती। उनके अन्दर दया का भाव और सिंह का साहस उत्पन्न नहीं करती। ऐसी शिक्षा निरर्थक है। हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र निर्माण हो, मानसिक विकास बढ़े, बुद्धि का विकास हो और व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो और जो भावों और विचारों को आत्मसात कराये। उन्होंने अपने कार्य में निम्न वर्ग का विशेष ध्यान रखा। वे तो कहा करते थे– **''ओ भारत! निम्न वर्गों को मत भूल। वे तो अज्ञानी, निर्धन तथा असाक्षर हैं। भंगी, चमार आदि तेरे हाथ की मज्जा हैं।''**

पाँच वर्ष की आयु होने पर उनका अक्षराम्भ संस्कार सम्पन्न हुआ था और उन्हें मेट्रीपोलिटन इंन्स्टीटयूट में प्रवेश दिलाया गया था। चौदह वर्ष की आयु पर वे 1877 ई. में रायपुर (म.प्र.) में आए और लगभग दो वर्ष वहाँ रहे, नरेन्द्र को परमहंस जी ने दक्षिणेश्वर आमंत्रित किया, वह सहसा दक्षिणेश्वर जा पहुँचे और रामकृष्ण से उन्होंने पूछा, **''आप ने ईश्वर को देखा है ? ''परमहंस जी ने मुस्कुराकर कहा ''हॉ इसी तरह जैसे तुझे देख रहा हूँ। तुझे भी दिखा सकता हूँ पर निर्देशानुसार चलना पड़ेगा''** श्रीरामकृष्ण के संस्पर्श में आने के फलस्वरुप उनकी अन्तनिर्हित आध्यात्मिक पिपासा जाग्रत हो उठी, वे जगत् की क्षणभंगुरता तथा बौद्धिक शिक्षा की व्यर्थता का बोध करने लगे, धीरे–धीरे उन्होंने परमहंस जी से दीक्षा लेनी शुरु की, नरेन्द्रनाथ ने घर त्याग दिया और परमहंस जी की शरण में रहने लगे, उनका संकल्प देखकर परमहंस को शान्ति मिली, उन्होंने नरेन्द्र पर अपना सारा भार डाल दिया, नरेन्द्र ने अनन्य चित्त से उनकी सेवा की इससे प्रसन्त होकर रामकृष्ण ने उन्हें सन्यास की दीक्षा दी, सन्यास ग्रहण के पश्चात नरेन्द्र को स्वामी विवेकानन्द का नया नाम मिला, सन् 1886 की 16 अगस्त को परमहंस जी ने महा समाधी ले ली, परमहंस की मृत्यु के 2 साल बाद उन्होंने पूर्णसन्यास ग्रहण कर लिया, उन्होंने और उनके शिष्यों ने अपना जीवन जगत हित के लिए उत्सर्ग करने की शपथ ली, उसी दिन उन्होंने अपना नया नामकरण किया– विवेकानन्द और भ्रमण शुरु किया वे काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थो में गए कुछ दिनों बाद वे 1893 में विवेकानन्द संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो शहर में विशाल धर्मसभा में गये, उन्होंने

वहाँ हिन्दुत्व की महानता को प्रतिस्थापित कर पूरे विश्व को चौंका दिया। विवेकानन्द के शब्दों में, **''जिस धर्म का प्रतिनिधि में हूँ, वह सनातन हिंदू धर्म है, इसके मूल में संपूर्ण मानव जाति का कल्याण निहित है यह धर्म इतना व्यापक है कि दुनिया के सभी धर्म इसमें समाहित हो सकते हैं।''** उनके भाषण से प्रभावित होकर कई लोग उनके शिष्य बन गए, इंग्लैण्ड की कुमारी मूलर, कुमारी नोवल, श्री गुडविन इनके प्रमुख शिष्य थे । 1899 में उन्होंने गुरु के नाम पर रामकृष्ण सेवाश्रम की स्थापना की, कलकत्ता के निकट बैलूर व अल्मोड़ा में इन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, अपने गुरु के सद्कार्यों व विचारों का प्रचार करते–करते अन्ततः 4 जुलाई 1902 को 39 वर्ष 5 माह की आयु में उन्होंने प्राण त्याग दिये, यद्यपि स्वामी विवेकानन्द जी हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन भारत के इस महान पुत्र की महान उपलब्धि पर प्रत्येक भारतवासी गर्व करेगा व उन्हीं के पदचिन्हों पर चलने का प्रयास करेगा। इनका जीवन प्रत्येक भारतीय के लिए अनुकरणीय है।

इनकी दृष्टि से शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम मनुष्य का शारीरिक विकास किया जाना चाहिए। इन्होंने भारत की जनता की दरिद्रता को स्वयं अपनी आँखों से देखा था। ये चाहते थे कि पढ़े लिखे और समाज लोग हीनों की सेवा करें, उन्हें ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न करें, समाज सेवा करें। चरित्र ही मनुष्य को सत्यनिष्ठ बनाता है, कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। इसलिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर भी बल दिया । स्वामी जी ने देश में उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने और उसके द्वारा अपने ही देश में इंजीनियरों, डॉक्टरों, वकीलों और प्रशासकों आदि की शिक्षा की व्यवस्था करने पर भी बल दिया। स्वामी जी आत्मा की पूर्णता में विश्वास करते थे और यह मानते थे कि आत्मा सर्वतः है। मनुष्य जीवन के मुख्य रुप से तीन पक्ष होते हैं– प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक। स्वामी जी इन तीनों पक्षों को महत्व देते थे, परन्तु सर्वाधिक महत्व आध्यात्मिक पक्ष को देते थे। डिट्रायट में स्वामी जी ने 25 मार्च 1894 को फ्री प्रेस कॉफ्रेस में भारतीय नारी के ऊपर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि ''पश्चिमी नारी मात्र पत्नी के रुप में जानी जाती है जबकि भारत में उसकी छवि मॉ की है जो अपना सर्वस्व अपने पुत्रों के पालन–पोषण में लूटा देती है और बदले में कुछ नहीं चाहती। अतः पाश्चात्य और भारतीय नारी की तुलना नहीं की जा सकती। उन्होंने आगे कहा कि हिन्दू–समाज नारी की मॉ भाव से पूजा करता है और सन्यासियों को भी अपनी मॉ के सामने नत–मस्तक पृथ्वी का स्पर्श करना पड़ता है। यहाँ परिव्रत्य का बहुत सम्मान होता है। विवेकानन्द जनता की दरिद्रता व पीड़ा से अत्यधिक दुःखी हुए व उन्होंने उनकी दशा सुधारने के लिए आध्यात्मिकता का मार्ग चुना, विवेकानन्द अब समाधि लगाने में लीन रहने लगे, इस पर परमहंस ने उसे कहा कि वे स्वयं को ही आध्यात्मिकता में लीन न रखें वरन संपूर्ण मानवता को भी ध्यान में रखें, विवेकानन्द ने परमहंस के आदर्शो का पालन किया व उन्होंने ऐसा मार्ग अपनाया, जिससे आध्यात्मिकता के साथ जन कल्याण का भी ध्यान रखा जा सके। अद्वैत वेदान्त को ये सार्वभौमिक विज्ञान धर्म कहते थे। इन्होंने वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने–समझने और उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का स्तुत्य प्रयास किया है। यही उनके अद्वैत वेदान्त का नयापन है और इसी आधार पर इनके दार्शनिक चिन्तन को नव्य वेदान्त कहा जाता है। यहॉ स्वामी जी के नव्य वेदान्त की तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा प्रस्तुत है।

२. विवेकानन्द के नव्य वेदान्त की तत्व मीमांसा :

अद्वैत दर्शन के अनुसार 'ब्रह्म' इस सृष्टि का आदि तत्व है और वही इस ब्रह्मण्ड की रचना का कर्ता और उपादान कारण है। वेदान्तियों का तर्क है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले का निर्माण स्वयं करती है और जाले बनाने का पदार्थ अपने अंदर से निकालती है ठीक उसी प्रकार ब्रह्म इस ब्रह्मण्ड का निर्माण स्वयं करता है और इसका उपादान कारण भी वह स्वयं ही है। स्वामी विवेकानन्द इस सत्य को स्वीकार करते थे। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार के सभी स्थूल पदार्थ और सूक्ष्म आत्माएँ ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के अंश हैं। दूसरे शब्दों में यह सारा संसार ब्रह्ममय है। प्रश्न उठता है कि इस ब्रह्म का स्वरुप क्या है। अद्वैतवादियों के अनुसार ब्रह्म एक ऐसी शक्ति है जिसका कोई स्वरुप नहीं हैं यह निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। माया के योग से यह साकार ब्रह्म (ईश्वर) का रुप धारण करता है। यह स्थूल इन्द्रिय ग्राह्य जगत और उसके समस्त पदार्थ उसके साकार रुप हैं। आत्मा के सम्बन्ध में भी स्वामी जी अद्वैतवादियों के विचार से सहमत हैं। उनके अनुसार सभी आत्माएँ परमात्मा का अंश मात्र है और परमात्मा की भांति वे भी अनादि और अनन्त हैं। अतः उनके जन्म और मरण का प्रश्न नहीं उठता। अद्वैत के अनुसार संसार के अन्य पदार्थ भी ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के ही अंश हैं पर आत्मा और अन्य पदार्थो में अन्तर इतना है कि आत्मा सर्वव्यापी और सर्वज्ञाता है और उसमें अपने वास्तविक स्वरुप परमात्मा को समझने और उसे प्राप्त करने का गुण है। जबकि अन्य पदार्थो में यह गुण नहीं है। मनुष्य को विवेकानन्द शरीर, मन और आत्मा का योग मानते थे और यह मानते थे कि मनुष्य जीवन के दो पक्ष हैं– एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक।

३. विवेकानन्द के नव्य वेदान्त की ज्ञान एवं तर्क मीमांसा :

स्वामी जी ने ज्ञान को दो भागों में बांटा है– भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान के अन्तर्गत इन्होंने वस्तुजगत (उसकी समस्त वस्तुओं और क्रियाओं) के ज्ञान को रखा है और आध्यात्मिक ज्ञान के अन्तर्गत सूक्ष्म

जगत (परमात्मा, आत्मा और जीवात्माओं) के ज्ञान और सूक्ष्म जगत के ज्ञान को प्राप्त करने के साधन मार्गों (ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग और राज योग) के ज्ञान को रखा है। वेदान्त के प्रतिपादक शंकर के अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान असत्य ज्ञान है और सूक्ष्म जगत का ज्ञान सत्य ज्ञान है। परन्तु विवेकानन्द वस्तु जगत और सूक्ष्म जगत दोनों के ज्ञान को सत्य ज्ञान मानते थे। इनका तर्क है कि यह वस्तु जगत ब्रह्म द्वारा ब्रह्म से निर्मित है और ब्रह्म सत्य है तब यह जगत भी सत्य होना चाहिए। इनके अनुसार वस्तु जगत का ज्ञान प्रत्यक्ष विधि और प्रयोग विधि से होता है और सूक्ष्म जगत का ज्ञान सत्संग, स्वाध्याय और योग द्वारा होता है। योग को तो किसी भी प्रकार के ज्ञान (वस्तु जगत अथवा सूक्ष्म जगत के ज्ञान) प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे।

४. विवेकानन्द के नव्य वेदान्त की मूल्य एवं आचार मीमांसा :

स्वामी जी मनुष्य को आत्माधारी मानते थे और शंकर की इस बात से सहमत थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है, इस संसार के आवागमन से छुटकारा प्राप्त करना है, आत्मा का परमात्मा में लीन करना है, परन्तु ये इस वस्तु जगत और उसमें मानव जीवन को भी सत्य मानते थे इसलिए वस्तु जगत में उसे शारीरिक दुर्बलता, मानसिक दासता, आर्थिक अभाव और हीनता की भावना से भी मुक्त कराने पर बल देते थे। इन दोनों प्रकार की मुक्ति के लिए इन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति को अध्ययनशील, विवेकशील एवं कर्मशील होने का उपदेश दिया है और सत्संग, भक्ति एवं योग (ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग, राज योग) साधना का उपदेश दिया है। मनुष्य के आचार–विचार के सम्बन्ध में स्वामी जी का स्पष्ट मत है कि मनुष्यों को सदैव सत्य का पालन करना चाहिए और दीन–हीनों की सेवा करनी चाहिए।

स्वामी जी मनुष्य को ईश्वर का मन्दिर मानते थे और मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इनकी दृष्टि से मनुष्य को मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिए, अपनी जीविका ईमानदारी से कमानी चाहिए, दीन–हीनों की सेवा करनी चाहिए और इस प्रकार अपने को शुद्ध एवं निर्मल बना कर योग साधना के योग्य बनाना चाहिए और फिर किसी भी योग मार्ग (ज्ञान, कर्म, भक्ति, अथवा राज) द्वारा आत्मानुभूति करनी चाहिए।

५. विवेकानन्द का शैक्षिक चिन्तन :

स्वामी विवेकानन्द भारतीय दर्शन के पण्डित और अद्वैत वेदान्त के पोषक थे। ये वेदान्त को व्यावहारिक रुप देने के लिए प्रसिद्ध है। इनके दार्शनिक विचार सैद्धान्तिक रुप में इनके द्वारा विरचित पुस्तकों में पढ़े जा सकते हैं और इनका व्यावहारिक रुप रामकृष्ण मिशन के जन कल्याणकारी कार्यो में देखा जा सकता है। स्वामी जी अपने देशवासियों की अज्ञानता और निर्धनता, इन दो से बहुत चिन्तित थे और इन्हें दूर करने के लिए इन्होंने शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया था। ये अपने और अपने साथियों को केवल वेदान्त के प्रचार में ही नही लगाए रहे, इन्होंने जन शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार में भी बड़ा योगदान दिया है। भारतीय शिक्षा को भारतीय स्वरुप प्रदान करने के लिए ये सदैव स्मरण किए जाएंगे। यहाँ इनके शैक्षिक विचारों का क्रमबद्ध वर्णन प्रस्तुत हैं।

६. शिक्षा का सम्प्रत्यय :

स्वामी जी शिक्षा के द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवनों के लिए तैयार करना चाहते थे। इनका विश्वास था कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से सम्पन्न एवं सुखी नहीं होते तब तक ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग ये सब कल्पना की वस्तु है। लौकिक दृष्टि से इन्होंने नारा दिया– **'हमें ऐसी शिक्षा चाहिए जिसके द्वारा चरित्र का गठन हो, मन को बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो मनुष्य स्वालम्बी बनें।** इस प्रकार की शिक्षा को ये 'मनुष्य के निर्माण की शिक्षा (Man Making education) कहते थे। परन्तु मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य ये अपने अन्दर छिपी आत्मा (पूर्णता) की अनुभूति ही मानते थे। पारलौकिक दृष्टि से इन्होंने उद्घोषणा की– **'शिक्षा मनुष्य की अन्तनिर्हित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। इनकी दृष्टि से जो शिक्षा ये दोनों कार्य करती है, वही वास्तविक है।** स्वामी जी के अनुसार शिक्षा की परिभाषा– **''यदि शिक्षा का अर्थ सूचनाओं से होता, तो पुस्तकालय संसार की सर्वश्रेष्ठ संत होते तथा विश्वकोष ऋषि बन जाते।''** उनके कथनानुसार शिक्षा का अर्थ दूसरों के विचार को रट लेना नहीं है, वरन् शिक्षा का अर्थ मनुष्य बनाना है। उसका विकास करना है, निर्माण करना है। उनका कहना है कि हमें तो ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे उद्योग धन्धों की वृद्धि एवं विकास हो, मुनष्यों को व्यवसाय ढूँढने के बदले आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कमाई कर सके और आपत्ति काल के लिए कुछ संचय कर सके। इस प्रकार वे सैद्धान्तिक शिक्षा का विरोध और व्यवहारिक शिक्षा का समर्थन करते थे।

७. शिक्षा का उद्देश्य :

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों रुपों को वास्तविक मानते थे, सत्य मानते थे। इसलिए मनुष्य के दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे। इस हेतु स्वामी जी ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों पर बल दिया है उन्हें हम निम्नलिखित रुप में क्रमबद्ध कर सकते हैं–

- **शारीरिक विकास–** स्वामी जी भौतिक जीवन की रक्षा एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति और आत्मानूभूति दोनों के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता समझते थे।
- **मानसिक एवं बौद्धिक विकास–** स्वामी जी ने भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उसके बौद्धिक पिछड़ेपन को बताया और इस बात पर बल दिया कि हमें अपने बच्चों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना चाहिए और इसके लिए उन्हें आधुनिक संसार के ज्ञान–विज्ञान से परिचित कराना चाहिए।
- **समाज सेवा की भावना का विकास–** स्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि पढ़–लिखने का अर्थ यह नहीं कि अपना ही भला किया जाए, मनुष्य को पढ़–लिखने के बाद मनुष्य मात्र की भलाई करनी चाहिए। समाज सेवा से इनका तात्पर्य दया या दान से नहीं था, समाज सेवा से इनका तात्पर्य दीन–हीनों के उत्थान में सहयोग करने से था।
- **नैतिक एवं चारित्रिक विकास–** नैतिकता से इनका तात्पर्य सामाजिक नैतिकता और धार्मिक नैतिकता दोनों से था और चारित्रिक विकास से तात्पर्य ऐसे आत्मबल के विकास से था जो मनुष्य को सत्य मार्ग पर चलने में सहायक हो और उसे असत्य मार्ग पर चलने से रोके। इनका विश्वास था कि ऐसे नैतिक एवं चरित्रवाल मनुष्यों से ही कोई समाज अथवा राष्ट्र आगे बढ़ सकता है, ऊँचा उठ सकता है।
- **व्यावसायिक विकास–** स्वामी जी ने भारत की दरिद्र जनता को बड़े–निकट से देखा था, उनके शरीर से झाँकती हुई हड्डियों को रोटी, कपड़े और मकान की मांग करते हुए देखा था। साथ ही इन्होंने पाश्चात्य देशों के वैभवशाली जीवन को भी देखा था और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उन देशों ने यह भौतिक सम्पन्नता ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी के विकास और प्रयोग से प्राप्त की है। इसके लिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्यों को उत्पादन एवं उद्योग कार्यों तथा अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।
- **राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबन्धुत्व का विकास–** स्वामी जी के समय हमारा देश अंग्रेजों के आधीन था, स्वामी जी ने अनुभव किया कि परतन्त्रता हीनता को जन्म देती है और हीनता हमारे सारे दुःखों का सबसे बड़ा कारण है। इन्होंने उस समय ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया जो देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करें, उन्हें संगठित होकर देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत करे। परन्तु ये संकीर्ण राष्ट्रीयता के हामी नहीं थे।
- **धार्मिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक विकास–** इनका स्पष्ट मत था कि मनुष्य का भौतिक विकास आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि में होना चाहिए और उसका आध्यात्मिक विकास भौतिक विकास के आधार पर होना चाहिए और ऐसा तभी सम्भव है जब मनुष्य धर्म का पालन करे। धर्म को स्वामी जी उसके व्यापक रुप में लेते थे। इनकी दृष्टि से धर्म वह है जो हमें प्रेम सिखाता है और द्वेष से बचाता है, हमें मानवमात्र की सेवा में प्रवृत्त करता है और मानव के शोषण से बचाता है और हमारे भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक होता है।

८. शिक्षा की पाठ्यचर्या :

इन्होंने शिक्षा की पाठ्यचर्या में मनुष्य के शारीरिक विकास हेतु खेल–कूद, व्यायाम और यौगिक क्रियाओं और मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु भाषा, कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, गणित और विज्ञान विषयों को स्थान देने पर बल दिया। भाषा के सन्दर्भ में स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा विस्तृत था। इनकी दृष्टि से अपने सामान्य जीवन के लिए मातृ भाषा अपने धर्म दर्शन को समझने के लिए संस्कृत भाषा, अपने देश को समझने के लिए प्रादेशिक भाषाओं और विदेशी ज्ञान–विज्ञान एवं तकनीकी को समझने के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है अतः इन भाषाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। कला को ये मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग मानते थे और इसके अन्तर्गत चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, नृत्य और अभिनय सभी को पाठ्यक्रम में स्थान देने के पक्ष मे थे। इतिहास के अन्तर्गत ये भारत और यूरोप, दोनों के इतिहास को पढ़ाने के पक्ष में थे। इनका तर्क था कि भारत का इतिहास पढ़ने से बच्चों में विदेश प्रेम विकसित होगा और यूरोप का इतिहास पढ़ने से वे भौतिक श्री प्राप्त करने के लिए कर्मशील होगें। इन्होंने राजनीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को भी पाठ्यचर्या में स्थान देने पर बल दिया। इनका विश्वास था कि इन दोनों विषयों के अध्ययन से बच्चों में राजनैतिक चेतना जागृत होगी और वे आर्थिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करेंगे।

९. शिक्षण विधियॉ :

स्वामी जी ने भौतिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष, अनुकरण, व्याख्यान, निर्देशन, विचार–विमर्श और प्रयोग विधियों का समर्थन किया है और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वाध्याय, मनन, ध्यान और योग की विधियों का समर्थन किया है। इन्होंने अपने अनुभव के आधार पर यह बात बहुत बलपूर्वक कही कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान–प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि योग विधि (एकाग्रता) है। इनकी दृष्टि से भौतिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए

अल्प योग (अल्पकालीन एकाग्रता) ही पर्याप्त होता है परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूर्ण योग (दीर्घकालीन एकाग्रता) की आवश्यकता होती है।

अनुशासन–

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अनुशासन का अर्थ है अपने व्यवहार में आत्मा द्वारा निर्दिष्ट होना। इनके अनुसार जब मनुष्य अपने प्राकृतिक 'स्व' से प्रेरित होकर कार्य करता है तो हम उसे अनुशासित नहीं कह सकते, जब वह अपने प्राकृतिक 'स्व' पर संयम रखकर सामाजिक 'स्व' से प्रेरित होता है तो हम उसे अनुशासित कह सकते हैं। परन्तु वास्तव में अनुशासित वह है जो आत्मा से प्रेरित होकर कार्य करता है। स्वामी जी शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को आत्मानुशासन का उपदेश देते थे।

शिक्षक–

स्वामी जी प्राचीन गुरुगृह प्रणाली के समर्थक थे। इनकी दृष्टि से शिक्षकों को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का ज्ञान होना चाहिए जिससे वे बच्चों को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवन के लिए तैयार कर सकें। स्वामी जी शिक्षकों से यह भी आशा करते थे कि वे मनोविज्ञान की सहायता से बच्चों की कर्मजनित भिन्नता को समझकर उनके लिए उनके अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करें।

शिक्षार्थी–

स्वामी जी के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक, किसी भी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी ब्रह्मचर्य का पालन करें। स्वामी जी के अनुसार गुरु–शिष्य का सम्बन्ध केवल लौकिक ही नहीं होना चाहिए, अपितु उन्हें एक–दूसरे के दिव्य स्वरुप को भी देखना समझना चाहिए।

विद्यालय–

स्वामी जी गुरुगृह प्रणाली के हामी थे। परन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ये यह जानते थे कि अब गुरु गृह जन कोलाहल से दूर कहीं प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थापित नहीं किए जा सकते। ये केवल इस बात पर बल देते थे कि विद्यालयों का पर्यावरण शुद्ध हो और वहाँ व्यायाम, खेल–कूद, अध्ययन–अध्यापन और इन सबके साथ–साथ समाज सेवा, भजन कीर्तन एवं ध्यान की क्रियाएँ भी सम्पादित हों।

१०. शिक्षा के अन्य पक्ष :

जन शिक्षा–

इन्होंने उद्घोष किया कि जब तक भारत के सभी नर–नारी शिक्षित नहीं होते तब तक हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकते। इन्होंने समाज और राज्य से जन शिक्षा की व्यवस्था की अपेक्षा की। जन शिक्षा से स्वामी जी का तात्पर्य बच्चों, युवकों और अशिक्षित प्रौढ़ों, सबको शिक्षित करने से था। इन्होंने शिक्षित लोगों को आहवान किया कि वे अशिक्षित प्रौढ़ों और वृद्धों को साक्षर बनाएँ, उन्हें शिक्षित करें। उन्होंने कहा कि जनसाधारण की शिक्षा उनकी निजी भाषा में होनी चाहिए। उनका विचार है कि यदि गरीब बालक शिक्षा लेने नहीं आ सकता है, तो शिक्षा को उसके पास पहुंचना चाहिए। स्वामी जी का सुझाव है कि यदि सन्यासियों में से कुछ को धर्म सम्बन्धी विषयों की शिक्षा देने के लिए संगठित कर लिया जाये, तो बड़ी सरलता से घर–घर घूमकर वे अध्यापन तथा धार्मिक शिक्षा दोनों काम कर सकते हैं। कल्पना कीजिए कि दो सन्यासी कैमरा, ग्लोब और कुछ मानचित्रों के साथ संध्या समय किसी गांव में पहुचे। इन साधनों के द्वारा देश के सम्बन्ध में अपरिचित जनता को वे इतनी बातें बताते हैं, जितनी वे पुस्तक द्वारा अपने जीवन भर में भी नहीं सीख सकते हैं क्या इन वैज्ञानिक साधनों द्वारा आज की जनता के अज्ञानमय अंधकार को शीघ्र दूर करने का यह एक उपयुक्त सुझाव नहीं है? क्यों सन्यासी स्वंय इस लोकसेवा द्वारा अपनी आत्मा की ज्योति को अधिक प्रदीप्त नहीं कर सकते हैं ?

स्त्री शिक्षा–

स्वामी जी अपने देश की स्त्रियों की दयनीय दशा के प्रति बड़े सचेत थे। इन्होंने उद्घोष किया कि नारी का सम्मान करो, उन्हें शिक्षित करो और उन्हें आगे बढ़ने के अवसर दो। इन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज अथवा राष्ट्र का विकास नहीं कर सकते। परन्तु स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में इनका दृष्टिकोण पूर्णरुपेण भारतीय था। ये उन्हें आदर्श गृहणी, आदर्श माताएँ, आदर्श शिक्षिकाएँ और समाज सुधारक बनाना चाहते थे। उन्होंने कहा कि भारत में नारी ईश्वर की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है और उसका सम्पूर्ण जीवन इस विचार से ओत–प्रोत है कि वह माँ हैं। वे कहते है कि देश का उद्वार स्त्रियाँ ही कर सकती हैं क्योंकि वे ही अपने बालक की प्रथम गुरु होती है। वे

जैसे संस्कार उसमें डालेगी वैसा ही उसका व्यक्तित्व निर्मित होगा। अतः राष्ट्र निर्माण की सर्वाधिक नियामक स्त्रियॉ ही हैं इसलिए भी वे सम्माननीय हैं।

सह शिक्षा–

स्वामी जी सह–शिक्षा के विरोधी थे। स्वामी जी का मानना था कि सह शिक्षा इसलिए नहीं होनी चाहिए क्योंकि स्त्री–पुरुषों की शिक्षा की पाठ्यचर्या समान नहीं होती तथा सह शिक्षा आत्म संयम में बाधक होती है।

व्यावसायिक शिक्षा–

व्यावसायिक शिक्षा से स्वामी जी का तात्पर्य केवल कुटीर उद्योगों और सामान्य शिल्पों की शिक्षा से नहीं था अपितु पाश्चात्य देशों के विज्ञान और तकनीकी शिक्षा से भी था।

धर्म शिक्षा–

स्वामी जी धार्मिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। परन्तु धार्मिक शिक्षा के संदर्भ में स्वामी जी के विचार बहुत उदार थे। ये धर्म को किसी सम्प्रदाय की सीमा में बॉधने के पक्ष में नहीं थे, ये धर्म को मनुष्य जीवन के शाश्वत् मूल्यों के उद्घोषक के रुप में स्वीकार करते थे।

राष्ट्रीय शिक्षा–

यूँ स्वामी जी ने कोई राष्ट्रीय शिक्षा योजना तो प्रस्तुत नहीं की परन्तु इन्होंने इसकी आवश्यकता पर बहुत बल दिया था। इन्होंने उद्घोष किया कि जहॉ से जो अच्छा और उत्तम मिले उसे स्वीकार करो।

११. स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता :

- विवेकानन्द ने भौतिक शिक्षा पर जोर दिया तथा वर्तमान में भौतिक शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है।
- वर्तमान में छात्र–छात्राओं को मूल्यों की शिक्षा देने की आवश्यकता है जिसकी वकालत विवेकानन्द ने की थी।
- विवेकानन्द ने निम्न वर्ग का विशेष ध्यान रखा जो कि वर्तमान में भी इस पर जोर दिया जा रहा है।
- विवेकानन्द ने जन शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। सरकारों द्वारा जन शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है।
- वर्तमान समय में बालक–बालिकाओं के चरित्र निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता है।
- स्वामी जी मनुष्य निर्माण की शिक्षा की बातें करते थे जिसकी हमें अत्यन्त आवश्यकता है।
- स्वामी जी सैद्धान्तिक शिक्षा का विरोध करते थे जिसका वर्तमान समय में भी विरोध किया जा रहा है।
- विवेकानन्द संकीर्ण राष्ट्रीयता से दूर रहने की शिक्षा देते हैं।
- विवेकानन्द जी मानवमात्र की सेवा पर बल देते हैं।
- स्वामी जी चाहते थे कि व्यक्ति आत्मनिर्भर बनें।
- उन्होंने ज्ञान प्राप्ति हेतु उपयुक्त भाषाओं को चुना।
- उनके द्वारा जिन शिक्षण विधियों का चयन किया गया उनका प्रयोग वर्तमान समय में अत्यधिक होता हैं।
- उन्होंने कहा शिक्षा द्वारा अभिव्यक्ति मिलनी चाहिए जो कि वर्तमान मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों से मेल खाता है।
- वे शिक्षा द्वारा देश की गरीबी दूर करने के पक्षधर थे जो हमेशा ही सत्य साबित होता है।
- स्वामी विवेकानन्द जी का आत्मानुशासन वर्तमान समय के नियमों से मेल खाता है।
- उन्होंने शारीरिक दण्ड का विरोध किया जो कि भारत सरकार द्वारा आर.टी.ई. अधिनियम, 2009 द्वारा अपराध घोषित कर दिया गया।

१२. उपसंहार :

स्वामी जी ने मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर ध्यानपूर्वक चिन्तन किया है और चरित्र को उन्होंने प्रमुखता दी है। चरित्र ही मानव–जीवन का सूत्रधार है और वही मनुष्य को बड़े–बड़े कार्य करने की शक्ति प्रदान करता है। इसका दार्शनिक पहलू तो उत्तम है, परन्तु व्यवहारिक पक्ष दुर्बल है। व्यवहारिक पक्ष इसलिये भी नहीं उभर पाया कि विद्यमान परिस्थितियों में शिक्षा के मापदण्ड बदल गये हैं और उन मापदण्डों के अनुसार पूर्णत्व प्राप्त करना होगा। स्वामी विवेकानन्द

इस युग के पहले भारतीय हैं जिन्होंने हमें हमारे देश की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और पाश्चात्य देशों की भौतिक श्रेष्ठता से परिचित कराया और हमें अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास के लिए सचेत किया। इन्होंने उद्घोष किया कि भारत के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करो और शिक्षा द्वारा उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए सक्षम करो, उसे स्वावलम्बी बनाओ, आत्मनिर्भर बनाओ, निर्भय बनाओ, स्वाभिमानी बनाओ और इन सबसे ऊपर एक सच्चा मनुष्य बनाओ जो मानव सेवा द्वारा ईश्वर की प्राप्ति में सफल हो। इन्होंने देश के निर्बल एवं उपेक्षित व्यक्तियों पर विशेष रुप से ध्यान दिया। परन्तु कुल मिलाकर स्वामी जी के शैक्षिक विचार भारतीय धर्म और दर्शन पर आधारित हैं और भारतीय जन–जीवन के अनुकूल हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. आर. ए . शर्मा (2011)। *शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार*। मेरठः आर. लाल बुक डिपो।
2. कपिल, एच.के. & सिंह, ममता (2013)। *सांख्यिकी के मूल तत्व*। आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
3. कौल, लोकेश (2012)। *शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली*। नोएडाः विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड।
4. गुप्ता, एस. (2005)। *एजुकेशन इन इमर्जिंग इण्डियाँ, टीचर्स रोल इन सोशाइटी*। दिल्लीः शिप्रा पब्लिकेशन्स।
5. गेरैट, एच.ई. (2000)। *शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग*। लुधियानाः कल्याणी पब्लिशर्स।
6. चम्याल, डी.एस. (2017)। ए स्टडी बेस्ड ऑन स्वामी विवेकानन्दस लाइफ फिलोसाफी, एजुकेशनल फिलोसॉफी एण्ड इम्पोरटेन्स आफ हिज एजुकेशनल थाट्स इन मार्डन इरा। *इन्टरनेशनल ऑनलाइन मल्टीडिसीपलीनरी जरनल*। वाल्यूम– 7(3)।
7. चौहान एसबी.एस. & अन्य (2012–13)। *उत्तरांजलि*। हरिद्वारः भारतीय शिक्षा समिति उत्तराखण्ड (माध्यमिक अनुभाग)।
8. पलोड़, सुनिता & लाल, आर.बी. (2008)। *शैक्षिक चिन्तन एवं प्रयोग* / मेरठः आर.लाल बुक डिपो।
9. बैस्ट, जे. डब्ल्यू. (2011)। *रिसर्च इन एजुकेशन* । नई दिल्लीः पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।
10. राय, पी. & राय, सी. पी. (2012)। *अनुसंधान परिचय* । आगराः लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।

वेबसाइट

www.google.com
www.sodhganga.inflibnet.ac.in

.